मध्यकालीन निर्गुण संत दादू दयाल के वैचारिक दर्शन की वर्तमान प्रसांगिकता

शोधार्थी–श्रीमती आशा सुनारीवाल,
सह आचार्य–इतिहास, राजकीय महाविद्यालय सूरतगढ़, श्रीगंगानगर,
शोध निर्देशिका–प्रो. (डॉ.) विभा उपाध्याय, भारतीय इतिहास एंव संस्कृति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति की मूल पहचान अध्यात्म रही है। यद्पि विश्व की साम्रज्यवादी शक्तियों यथा शक, हूण, कुषाण, यूनानी, अरबी, फारसी, ब्रिटिश आदि ने हमारी संस्कृति पर विजय प्राप्त करने का प्रयास किया। किंतु भारतीय संस्कृति ने इन सब संस्कृतियों को अपने में मिला लिया। भारतीय संस्कृति आज भी अध्यात्म के लिए विश्व स्तर पर जानी जाती है। हमारी संस्कृति के मूल भाव को बनाये रखने में महत्ती भूमिका हमारे मनीषियों और संतो की रही है। युग परिवर्तन के साथ आज हम वैज्ञानिक युग में रह रहे है। आज नित नये अविष्कारों से मानव प्रकृति पर विजय प्राप्त कर रहा है। मानव के मन में प्राकृतिक और भौतिक सुखों की प्राप्ति की होड़ है। जिससे वह अपनी चिरसिंचित शाश्वत शान्ति को खो बैठा है। मानव की इस अशान्ति का निस्तार पाने का एकमात्र उपाय है, संतों की वाणी का अवलम्बन किया जाए। सन्त कबीर, रविदास, नामदेव, नानक, सूरदास, तुलसी, मीरा आदि महान संतों की वाणी से करोड़ों लोगों को शान्ति मिली है। संतों की इसी श्रृंखला में निंरजन निराकार परमोपासक ब्रह्मर्षि श्री दादू दयाल जी का नाम भी आता है। जो प्राणीमात्र के आत्मकल्याण और संसार के भवसागर को पार करने हेतु मार्गदर्शन प्रदान करते है।

दादू जी का जन्म यद्यपि अहमदाबाद में हुआ पर उनकी कर्मभूमि राजस्थान रही। अतः इनका परिचय हमारे लिए विशेष महत्व रखता है। तत्कालीन समय में हिन्दु और मुस्लिम दोनों धर्म में अन्धविश्वास बढ़े हुए थे। समाज में जाति व्यवस्था के बंधन कड़े थे। शुद्र एंव स्त्रियों की स्थिति शोचनीय थी। तब दादू दयाल जी ने तत्कालीन समाज को निचले पायदान से जोड़ने का प्रयास बिना किसी पूर्वाग्रह के किया। उनका वैचारिक दर्शन का क्षेत्र अत्यन्त वृहद है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के जीवों में एक ही परमात्मा का अंश देखता है। उनमें किसी प्रकार का भेद नहीं मानता। अतः दादू के वैचारिक दर्शन के अध्ययन की वर्तमान समय में आवश्यकता है।

दादू निर्गुण निरंकारी विचारधारा के संत थे। दादू अपने पूर्ववर्ती निर्गुण संतों का सम्मान और आदर करते थे। विशेष रूप से उन्होंने नामदेव, कबीर और रैदास के प्रति अगाध श्रद्धा प्रकट की है। दादू जी के आर्दश 'कबीर' जी थे। 'कबीर' ने जिस विचारधारा को जन्म दिया उसका पूर्णरूप दादूजी की वाणी में दिखाई देता है।

अमृत रांम रसाइण पीया, ताथै अमर कबीरा कीया।।2।।

रांम रांम कहि रांम समांनां, जन रैदास मिले भगवाना।।3।।[1]

दादू जी ने भक्ति को सहज भाव से अंगीकार किया, वे किसी मतवाद की उलझन में पड़ना नहीं चाहते थे। इसलिए निर्गुण भक्त होने पर भी उन्होंने ईश्वर के सगुण रूप को मान्यता दी है। दादू तुलसीदास के समकालीन थे। किंतु कबीर के मार्ग के अनुयायी थे। उनकी वाणी में कबीर और तुलसीदास जी के वैचारिक दर्शन का समन्वय देखने को मिलता है। उनका राम तुलसीदास के राम से अलग है। उनका राम ईश्वर है।

जो रोम–रोम में व्याप्त है। जिसका कोई आकार नहीं है। वह निरकांरी है। दादू के अनुसार राम है, राम की सत्ता है, परन्तु उसे कोई जान नहीं पाया। राम ने सृष्टि का निर्माण किया है। पर राम की इस सृष्टि का रहस्य हमारे समझ में कहां आता है। दादू ने अपनी वाणी में कहां है–

दादू देखौं दयाल कौं, सकल रह्या भरपूरि।

रोम रोम में रमि रह्या तूँ जिनि जाणे दूरि।।78।।[2]

दादू जी की वाणी में कबीर जी के मुकाबले विनय मिश्रित मधुरता अधिक थी। दादू जी तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक रूढ़ियों और साधना संबंधी मिथ्याचारों पर आघात करते समय कभी उग्र नहीं होते। वे कहते है कि जब तक मन विषय विकार में पड़ा रहता है, तब तक परम ब्रह्म की प्राप्ति नहीं की जा सकती। इसलिए जब मन की शुद्धि हो जायेगी तब तन की शुद्धि अपने आप हो जायेगी। वे अपनी बात विनम्रता पूर्वक कहते है–

मन मैला तन उज्जवल नाहीं। बहुत पचि हारै बिकार न जाहिं।।3।।

मन निर्मल तन निर्मल होई। दादू सांच बिचारै कोई।।4।।[3]

दादू दयाल के माता–पिता कौन थे और इनकी जाति क्या थी। इस बारे में प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। दादू जी का आविर्भाव समाज के निचले वर्ग से हुआ था। दादू जात–पात व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे। दादू के अनुसार जब सब जीवों का निर्माण एक परम ब्रह्म से हुआ तब कैसे किसी को ईश्वर की प्राप्ति से रोका जा सकता है। समाज की उच्च जातियों की सोच पर प्रहार करते हुए अपनी अपनी पीड़ा का बखान इस प्रकार करते है।

कौन आदमी कमीन बिचारा, किसकूँ पूजै गरीब पियारा।।टेक।।[4]

दादू जाति–पाति को नहीं मानते थे। उनके अनुसार सब जीवों में एक ही परमात्मा का अंश है। फिर मानव मानव भेद करना किस आधार पर उचित है? परमात्मा को मनुष्य की जाति–पाति से कोई सरोकार नहीं है, वह उन सभी का है जो उसका ध्यान करता है। दादू कहते है–

जाति पाँति पूछे नहिं काई। हरि को भजे सो हरि का होई।।[5]

दादू को अपनी जाति को लेकर किसी प्रकार की हीनता नहीं थी। उन्होंने स्वयम् कई स्थानों पर अपने को पिंजारा (रूई धूनने वाली जाति) होना स्वीकार किया है,–

धुन्या धू ज्यों परघटे, सून्या शेष महेश। दून्या में दादू कहे, मुन्या मन प्रवेश।।[6]

आचार्य चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी के अनुसार दादू जी 18 वर्ष तक अहमदाबाद फिर मध्यप्रदेश आदि स्थानों पर घूमते घूमते 30 वर्ष की अवस्था में साँभर पहुँचे। साँभर के बाद वे 1575 ई. में अपने 13 शिष्यों के साथ आमेर आ गये और अगले 14 वर्षों तक यहीं रहे।[7] उस समय आमेर कछवाहों की राजधानी था। यहाँ के शासकों की तूँती मुगल दरबार तक बजती थी। आमेर नरेश राजा भगवानदास के माध्यम से दादू जी के विचार मुगल सम्राट अकबर तक पहुँचे। दादू जी के शिष्य रज्जब जी ने लिखा है कि संवत् 1642 (1585 ई.) में सम्राट अकबर ने आध्यात्मिक चिन्तन के लिए दादू जी को फतेहपुर सीकरी बुलाया और चालीस दिन तक उनसे धार्मिक चर्चा की। अकबर ने उनसे सवाल किया कि खुदा की जात, अंग, वजूद और रंग क्या है? इस पर दादू जी ने यह जबाब दिया–

इसक अलह की जात है, इसक अलह का अंग।

इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग।।142।।

दादू जी के विचारों से अकबर काफी प्रभावित हुआ था।[8]

इसके बाद वे पुनः आमेर आ गये। संवत् 1650 से 1659 ई. तक जयपुर, मारवाड़ व बीकानेर राज्य में ज्ञान का दीपक जलाते रहे।[9] अन्त में संवत् 1659 (1602 ई.) में ये नारायणा कस्बे में स्थायी रूप से रहने लगे। यहीं इनकी इहलीला समाप्त हुई। इनकी इच्छानुसार उनके शरीर को भैराणा की पहाड़ी की खोह में रख दिया गया। इस गुफा को अब ''दादू खोह'' कहा जाता है। इनकी स्मृति में यहां प्रतिवर्ष फाल्गुन सुदी चतुर्थी से द्वादशी नौ दिन तक विशाल मेला प्रति वर्ष लगता है। जहाँ सभी दादू पंथी आते है। नारायाणा में ही दादू जी का एक विशाल मंदिर है, जहाँ उनके वस्त्र एंव वाणी रखी हुई है।[10] जिसके दर्शन करके लोग स्वयम् को धन्य मानते है।

दादू के गुरू कौन थे। इसका कई कोई प्रमाण नहीं मिलता। पं० सुधाकर जी के अनुसार दादू के गुरू 'कमाल' थे। क्योंकि दादू जी छोटे बड़े सब को ''दादा'' कहकर पुकारते थे इसलिए कमाल ने उन का नाम दादू रखा। दादू जी में क्षमा और दया का अंग इतना बड़ा था कि लोग दादू ''दयाल'' के नाम से पुकारने लगे।[11] दादू की वाणी में स्नेह, सहृदयता, दया, सरलता, सहजता, मिठास आदि गुणों के कारण सन्त साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान रखती है। जैसा दादू ने अपनी वाणी में कहां है–

काहे को दुःख दीजिए, सांई है सब माँहिं। दादू एकै आतमा, दूजा कोई नाँहिं।।12।।[12]

ऐसा कहा जाता है कि दादू जी ने 11 वर्ष की आयु में महात्मा बुड्ढन या ब्रह्मानन्द का उपदेश सुना[13] इसके बाद में चिंतन मनन में लग गये। 18 वर्ष की आयु में दादू जी अहमदाबाद से चलकर आबू (सिरोही) होते हुए करडाला पहुँचे। यहां की एक पहाड़ी पर 6 वर्ष की कठोर साधना के बाद आत्म–साक्षात्कार प्राप्त किया। इसके बाद 1568 ई. में सांभर आ गये, जहां इन्होंने धुनिये का कार्य आरम्भ किया यही पर सर्वप्रथम आपने अपने उपदेश जनता को देना शुरू किया। इन्होंने अपने उपदेशों में हिन्दु व मुसलमानों के धार्मिक अन्धविश्वासों का खण्डन करना आरम्भ किया था। साथ ही जात–पात और वर्ग भेद का विरोध किया। अतः इनकों अनेक विरोधाभासों का सामना करना पड़ा। सांभर के काजी द्वारा, इनकों नाना प्रकार के कष्ट दिये गये।[14] लेकिन दादू ने अपना कार्य जारी रखा। इनकी शिक्षा के प्रभाव से अनेक लोग उनके शिष्य बन गये। जिनको संगठित कर दादू ने सांभर में परमब्रह्म सम्प्रदाय की स्थापना की जो दादू के मरने के बाद दादू पंथ के नाम से जाना जाता है।

दादू के उपदेश काव्य, सूक्तियां और ईश्वर भजन के रूप में संगृहित है, जिसे बानी (वाणी) बोलते है। दादू के शिष्य जनगोपाल कृत 'दादू जन्म–लीला परची' माधोदास कृत 'संत–गुण सागर' राघवदास कृत 'भक्तमाला' एंव लालदास कृत 'नाम–माला' लिखा। मोहन जी दफ्तरी'' ने दादू जी के वचनों को लिखित रूप प्रदान किया। उनके शिष्य संतराम और जगन्नाथदास ने दादू की रचनाओं का संग्रह 'हरडे बानी' नाम से किया। कालांतर में रज्जब ने ''हरड़े वानी'' का सम्पादन 'अंगवधू' नाम किया। इसी के आधार पर अलग–अलग विद्वानों ने दादू वाणी को अपने–अपने ढ़ग से सम्पादित किया है। दादू जी रचनाओं का प्रथम संग्रह 1904 में ज्ञान सागर प्रेस बंबई ने प्रकाशित किया। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सुधाकर द्विवेदी के संपादकत्व में 1904 व 1907 ई. में ''दादू दयाल की वाणी''दो भागों में प्रकाशित की गई। 1917 ई. में

लाहौर से भी ''दादू पद संग्रह'' प्रकाशित हुआ। सबसे प्रमाणिक परशुराम चतुर्वेदी द्वारा तैयार किया गया ग्रन्थ ''दादू दयाल ग्रन्थावली'' है। जिसे काशी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया है।[15]

दादू जी ने अपनी वाणी से समाज को शिक्षित करने का प्रयास किया। उन्होंने समाजिक और धार्मिक सुधारों को सहज बनाकर ईश्वर प्राप्ति का सरल सहज मार्ग प्रशस्त किया।

सतगुरू पशु मानुष करै, मानष तै सिद्ध सोइ।

दादू सिध तै देवता, देव निरंजन होइ।। 12।।

दादू काढ़े काल मुख, अंधो लोचन देय।

दादू ऐसा गुरू मिल्या, जीव ब्रह्म कर लेय।। 13।।[16]

दादू ने कहा कि लोग पत्थरों में सृजित देवताओं के प्रति अपनी भक्ति प्रकट करते है। पर सभी के अतःकरण में जो निरंजन ब्रह्म का निवास है उससे वो अनभिज्ञ है, उसकी उपासना कोई नहीं करता अतः मंदिर, मस्जिद, तीर्थ, व्रत, नमाज आदि कर्मकाण्डो से कोई फायदा नहीं होने वाला। दादू ने मूर्ति पूजा, भूत, प्रेत आदि के स्थान पर निरंजन निराकार भक्ति पर बल देते हुए कहा–

जग अंधा नैन न सूझैरे, जिन सिरजे ताहि न बूझै।

पाहण की पूजा करै, करि आत्म घाता।

निरमल नैन न आवई, दोजग दिसि जाता।।1।।

पूजै देव दिहाड़िया, महामाई मानै। परगट देव निरंजना, ताकि सेव न जानै।।2।।

भैरों भूत सब भरम के, पसु प्राणी ध्यावै। सिरजनहारा सबनि का, ताकूँ नहीं पावै।।3।।[17]

दादू कहते है, आरती, पूजा, नमाज आदि भी अपनी देह के भीतर ही करनी चाहिए। हमारा सतगुरू हमारे भीतर ही है, इस तथ्य को कोई विरला ही समझ सकता है–

पूजण हारे पासि है, देहि माहै देवं।

(दादू) ता कौं छाड़ि करि, बाहरि मांडी सेवं।।258।।

(दादू) माहै कीजै आरती, माहै पूजा होइ।

माहै सतगुरू सेविए, बूझै बिरला कोई।।265।।

(दादू) हौज हजूरी दिल ही भीतर, गुस्ल हमारा सारं।

उजू साजि अलह के आगै, तहाँ निमाज गुजारं।।[18]

दादू सामाजिक समन्वय के पक्षधर थे। वे हिन्दु मुस्लिम लोगों में एकता चाहते थे। साथ ही विभिन्न वर्गों में विभाजित हिन्दुओं को एक सूत्र में देखना चाहते थे। दादू के अनुसार सभी में एक ही परमात्मा का अंश है ऐसे में एक दूसरे से भेदभाव करना ईश्वर को बांटने के समान है। जो किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं है।[19]

उनकी शिष्य परम्परा में हिन्दु और मुसलमान दोनों थे। दादू ने हिन्दू मुसलमान में कभी भेद नहीं किया, वे कहते है–

दोनौं भाई हाथ पग, दोनौं भाई कान।

दोनौं भाई नैन है, हिंदू मूसलमान।।7।। दादू के दूजा नहीं, एकै आतम राम।।[20]

दादू कहते है, यह सुष्टि परमात्मा की बनाई हुई है, जिसमें में कुँजर से लेकर कीट सभी में एक ही परमात्मा का अंश है। उसका कोई वर्ण नही, किंतु सभी वर्ण उसी के है तो फिर भेद कैसा? दादू के अनुसार जब तक हृदय में संशय और भ्रम रहते है, तब तक समष्टि का अभाव रहता है, जब दुविधा मिट जाए तब प्रत्येक प्रकार का भेदभाव समाप्त हो जाता है। जैसा दादू ने अपनी वाणी में कहा है–

दादू सम करि देखिए, कुँजर कीट समान।

दादू दुविधा दूरि करी, तजि आपा अभिमान।।28।।[21]

मध्यकाल समाज में हिन्दु–मुसलमान द्वारा अपने–अपने धर्म को श्रेष्ठ बताने की बात आम थी। मध्यकाल में हिन्दु–मुस्लिम आधार पर धार्मिक कट्टरता के उद्‌हरण इतिहास में भरे पड़े है। दादू ने कहा सभी जीवों में एक ही ईश्वर और आत्मतत्व निवास करता है, क्या हिन्दू ? क्या मुसलमान ?। दादू ने अपनी वाणी में कहा है कि–

(दादू) हिन्दू मारग कहैं हमारा, तुरक कहै राह मेरी।

कहाँ पंथ है, कहौं अलह का, तुम तौ ऐसी हेरी।।48।।

खंडि खंडि कर ब्रह्म को–पखि पखि लीया बांटि।।

कौण पंथ हम चलै कहौ धौ, साधौं करौ विचारा।।49।।

दादू पूरण ब्रह्म तजि, बँधौ भरम की गाँठि।।50।।

सब घटि येकै आत्मां, क्या हिन्दू क्या मुसलमान।।[22]

दादू जी पंथ और सम्प्रदाय के विरूद्ध थे। उन्होंने कहा कि सूर्य, हवा, पानी, आकाश, तारे, चन्द्रमा आदि जब एक पंथ में नहीं रहते तो फिर किस पंथ का अनुयायी बन कर रहा जाये।

ये सब किस के पंथ में, धरती अरू असमान।

पानी पवन दिन राति का, चदं सूर रहिमान।।113।।[23]

दादू की धर्म साधना पंथ सम्प्रदायों से ऊपर उठी हुई है, उनका धर्म वसुधैव कुटुम्बकुम है, जिसमें मानव मानव की समानता का भाव कार्य करता है।[24] दादू ने अपने जीवनकाल में किसी पंथ का निर्माण नहीं किया। दादू के मरने के बाद 'दादू पंथ' का उदय हुआ जिसका उद्‌देश्य समाज के सभी वर्गो में बिना किसी भेदभाव के भक्ति से समन्वय स्थापित करना था। दादूपंथ का सुंदर चित्रण दादू की वाणी में मिलता है–

भाई रे ऐसा पंथ हमारा, द्वेष रहित पंथ गहि पूरा, अधरण एक अधारा।

वाद–विवाद काहू सो नाहिं, माहि जगत थे न्यारा, समदृष्टि सुझाई सहज मे, आपहि आप विचारा।।69।। [25]

दादूपंथी साधू वैराग्य जीवन जीते है, न तिलक, न माला, न सिर पर चोटी और गले में कंठी नहीं पहनते है न किसी मंदिर में मूर्ति–पूजा करते है। प्रायः हाथ में सुमिरनी रखते है और जब मिलते है तब 'सत्तराम' कहकर अभिवादन करते है। इनमें किसी साधू की मृत्यु होने पर शव को चारपाई पर लिटाकर जंगल में छोड़ देते है ताकि मरने के बाद यह शरीर पशु–पक्षियों के पेट भरने के काम आ जाए। दादू प्रकृति की संरक्षक थे। वे पेड़–पौधो और पशु–पक्षियों में परमात्मा का अंश मानते थे। दादू दयाल ने अपने एक उपदेश में कहा है–

हरि भज साफल जीवना, पर उपगार समाई। दादू मरणा तहाँ भला, जहाँ पशु पंछी खाई।।[26]

दादू के अनुसार इस संसार के सभी जीवों में एक ही परमात्मा का अंश बताया है। इसलिए जीव हत्या नहीं करनी चाहिए। दादू कहते है। धर्म के नाम पर भी जीव हत्या नहीं करनी चाहिए। दादू जी जीव हत्या के विरोधी थे। अपनी वाणी में वे कहते है–

कोई काहू जीव की, करे आतमाघात, साँच कहूँ संशय नहीं, सो प्राणी दोजख जात।।4।।

नाहर सिंह सियाल सब, केते मुसलमान, मांस खाई मोमिन भये, बड़े मियाँ का ज्ञान।।5।। आपस कूँ मारे नहीं, पर कूँ मारण जाइ। दादू आपा मारै बिना, कैसे मिले खुदाई।।7।।[27]

दादू के अनुसार समाज के सभी वर्गों एंव जातियों मे प्रेम एंव समानता का भाव ही कार्य करता है, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, गरीब हो या अमीर या उच्च वर्ण का हो या निम्न वर्ण का हो। दादू जी मानव समानता के बारे में कहते है–

नीच ऊँच मध्यम को नांही, देखो राम सबनि के मौही।

दादू साँच साबिन में सोई, पे पकड़ जन निरभै होइ।।

जे पहुँचे तै कहि गए, तिन की एकै बात। सर्वे सचाने एकमति, तिन की एकै जात।।[28]

दादू जी के अनुसार हमारे सामाजिक जीवन का आधार प्रेम और करूणा है, परन्तु ये दोनों सीखने से नहीं आते, इसके लिए अंहकार को मारना पड़ता है। सांसारिक सफलता में अंहकार बाधक होता है, निराभिमानी होने पर मनुष्य, मानव सर्वरूप हो जाता है फिर उसे परमेश्वर खोजना नहीं पड़ता वही ईश्वर रूप हो जाता है। इसलिए अंहकार का त्याग कर देना चाहिए। दादू के ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में अंहकार को बाधक मानते है, अहकांर का त्याग कर मानव को साधु संगति करनी चाहिए –

(दादू) भावहीन जे पिरथवी, दया बिहूणा देस। भगति नहीं भगवंत की, तहं कैसा परवेश।।[29]

आपा मेटै हरि भजै तन मन तजै विकार। निरर्बेरी सब जीव सौं दादू यहु मत सार।।[30]

(दादू) आपा जग लगै, तब लग दूजा होई, जब यहु आपा मिटि गया, तब दूजा नहीं कोई।।47।।[31]

(दादू) इस संसार में दोई रतन अनमोल। इक साँई इक सतजन, इनका मोल न तोल।।60।।[32]

दादू जी सांसारिक विषय–विकार को दुख का कारण मानते है। वे कहते है, कि मानव देह नाश्वान है। पर जो जन्म मिला है इसे अनमोल मानते हुए भक्ति करनी चाहिए, भक्ति द्वारा ही मुक्ति संभव है इस बात पर जोर दिया–

''दुख दरिया संसार है, सुख सागर राम। दादू झूंठे तन के कारने, कीए बहुत विकार।।

बार बार यहु तन नहीं, नर नारायण देह। दादू बहुर न पाइए, जन्म अमोलक येह।।11।।[33]

दादू जी जीवन में सत्य के उपासक थे। उन्होंने कथनी और करनी के भेद को स्वीकार नहीं किया। वे यह चाहते थे कि जो कुछ भी कहा जाए उसे किया भी जाए।[34] उनके अनुसार मन, वचन, कर्म की एकता पर ही ज्ञान क्रिया की समरता बनती है, जो जीवन का मूल रहस्य है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका महत्व है। दादूजी काव्य में भक्ति–मुक्ति के साथ क्रियाशील जीवन बिताने की प्रेरणा भी है।–

दादू मनसा वाचा कर्मना, हिरदे हरि का भाव, अलख पुरिष आगे खड़ा, ता कै त्रिभुवन राव।।[35]

इस प्रकार हम देखते है, कि दादू का वैचारिक दर्शन का क्षेत्र अत्यन्त वृहद है। दादू ने धर्म के सभी पक्षों पर प्रकाश डाला। दादू ने समाज–सम्प्रदाय, जाति–पाति, आचार–विचार, तीर्थ–व्रत, सृष्टि, जीव–जगत, भक्ति–मुक्ती, आदि सभी पक्षों पर प्रकाश डाला है।

दादू की वाणी सभी प्रकार के भेदभाव से ऊपर उठकर एक समतामूलक समाज के निर्माण की बात कह गई है। दादू संसार से विरक्त होने की बात नहीं करते बल्कि मन वचन से कर्म से क्रियाशील रहने की बात कहते है। दादू जी का वैचारिक दर्शन आज भी उतना ही प्रासांगिक जितना मध्यकाल में था। आज भी दुर्भाग्यवंश हमारे समाज में जातिभेद, वर्णभेद एंव धार्मिक भिन्नता के भाव देखने को मिल जाते है। कई बार सम्प्रदायिक आधार पर झगड़े शुरू हो जाते है। आज विज्ञान के विनाशकारी और संहारक उपलब्धियों ने विश्व को विनाश के अन्तिम छोर तक पहुँचा दिया। आज देशों में सर्वत्र अशान्ति, भय, विद्वेष एंव पारस्परिक संघर्ष का ऐसा जाल फैलता जा रहा है कि निस्तार का कोई मार्ग दिखाई नहीं देता। ऐसे में भारतीय संतों की श्रृंखला में श्री दादू की वाणी कहती है, कि भौतिक सुखों की प्राप्ति से मानव को मानसिक और आत्मिक शांति नहीं मिलेगी । आत्मिक शान्ति अध्यात्म से मिलती है। अध्यात्म की प्राप्ति के लिए आपा का त्याग, निर्बेरी, दया, विषय–विकार का त्याग, जीव–अजीव में अभेद, मानव को मानव बनाने और भक्ति–मुक्ति, साधू–संगति एंव निरजंन–निरकांर परम ब्रह्म के सुमिरण आदि की बातों का मन, वचन, कर्म से पालन करने से मिलती है ऐसा दादू कहते है, कि मानव, मानव और प्राणीमात्र के आत्मकल्याण, सद्भावना से भवसागर पार कर सकता है।

इस प्रकार संतो की वाणी मानव को मानसिक और आत्मिक शांति का संदेश देती है। दादू के वैचारिक दर्शन में तो विश्व की समस्त चिंताओं का हल है। हम उनके समन्वयवादी सिद्धान्त एंव मानवतावादी धर्म को अपनाकर अपने समाज को एक सूत्र में बांध सकते है। उनका दर्शन संसार से पलायन का उपदेश नहीं देता, अपितु जीवन को संघर्षों से तपाते हुए सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है।[36]

दादू की वाणी 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की लोक कल्याणकारी भावना पर आधारित है। इस प्रकार दादू के वैचारिक दर्शन का क्षेत्र अत्यन्त वृहद **है।** उनका दृष्टिकोण भारतीय परिस्थितियों तक सीमित न रहकर वैश्विक रूप लिए हुए है। दादू की महिमा इतने वर्षों बाद आज भी बनी हुई है। दादू पंथ समाजिक और मानवीय सेवा के कार्य में लगा है आज भी फाल्गुन सुदी पंचमी से एकादशी तक प्रतिवर्ष नरैना में दादू

दयाल का मेला भरता है, जिसमें देश विदेश से श्रद्धालु भाग लेते है। एक प्रकार से दादू का वैचारिक दर्शन लोक कल्याणकारी भावना से ओत–प्रोत है। उसमें वो समस्त विधियां है, जो संसार को ध्वस्त होने से बचा सकती है। अतः दादू जी की वाणी को वेद के समान सुधा वर्षिणी कहना गलत नहीं होगा।[37] अतः दादू के वैचारिक दर्शन की महत्ता हर युग में बनी रहेगी।

सन्दर्भ :–

1. दादू दयाल की बानी, साखी, भाग–2, राग गौरी, पृ..22, बेलवेडियर, प्रेस, प्रयाग।

2. दादू दयाल की बानी, भाग–1, परचा का अंग, पृ.53, इलाहाबाद बेलवेडियर स्टोम प्रिंटिंग वर्क्स, प्रथम सं. ,1914

3. वही, पूर्वोक्त, भाग–2 राग गौरी, पृ. 13

4. दादू दयाल की बानी, साखी, भाग–2, राग बिलावल, पृ. 142–143

5. दादू दयाल की बानी, भाग–1, साखी, दादू का जीवन चरित्र, पृ. 1,2, इलाहाबाद बेलवेडियर स्टोम प्रिंटिंग वर्क्स, प्रथम सं.,1914

6. दादू जन्म परची (ह.ग्र.) क्रमांक 26635, पृ.35 (1733 ई.) प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर।

7. श्री सुखदयाल दादू; श्री दादू चरित्र चित्रावली, पृ. 13

8. दादू जन्म–लीला परची, (ह.ग्र.), क्रंमाक 26519, पृ.19, 18 वीं सदी, प्रा. वि. प्र. जोधपुर।

9. दादू जी जीवन चरित्र, (.ह.ग्र.), क्रमाकं 31599, प्रा.वि. प्र.जोधपुर।

10. दादू दयाल की बानी, भाग–1, साखी, जीवन चरित्र, (मुख्य तीर्थ) पृ. 6

11. वही, पूर्वोक्त, जीवन चरित्र, गुरू, पृ. 3

12 वही, पूर्वोक्त, जीवन चरित्र, दया निर्बेरता का अंग (29)–12

13. दादू–जन्म–लीला परची (ह.ग्र.), क्रमांक 26635, 1733 ई. प्रा. वि. प्र. जोधपुर।

14. राघवदास कृत भक्त–माला, पृ. 181–182; रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज मारवाड़ पृ. 291, 1891 ई.

15. पेमाराम, राजस्थान में धर्म, सम्प्रदाय व आस्थाएं, पृ. 187,

16. डॉ.बलदेव वंशी, दादू ग्रंथावली, अथ श्री गुरूदेव का अंग 12,13, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।

17. दादू दयाल की बानी, पद्य भाग–2, राग रामकली, दोहा–196, पृ. 83 बेलवेडियर, प्रेस, प्रयाग।

18. दादू दयाल की बानी, साखी, भाग–1,परचा को अंग, पृ. 72, 73, 69

19. पांडेय, अनिल कुमार– दादू दयाल की वाणी–समय और समाज, मीरायन, मार्च–मई 2016, पृ. 29

20. दादू दयाल की बानी, भाग–1, दया निर्बैरता का अंग, 28, पृ. 235

21. वही, पूर्वोक्त, पृ. 237

22. डॉ. बलदेव वंशी–अथ साँच का अंग–13, हिन्दु मुसलमानों का भ्रम, बानी 48, 49, 50

23. दादू दयाल की बानी, भाग–1, सांच का अंग, पृ. 144

24. सिंह, रविन्द्र कुमार– दादू काव्य की प्रासांगिकता, पृ. 70

25. भाग–2, राग–गौरी, पृ. 29

26. दादू जी की वाणी (ह.ग्र.), क्रमांक 25277, प्रा. वि. प्र. जो.

27. भाग–1, अथ साँच का अंग 13–अदया हिंसा–बानी, पृ. 133, 135

28. पांड़े प्रो. श्रीनिवास–समत्वबोध एंव संत दादूदयाल जी का संदेश, प्रज्ञा पत्रिका, पृ. 1 वाराणसी।

29. डॉ. बलदेव वंशी, दादूदयाल की ग्रंथावली, नई दिल्ली, (प्रकाशन संस्थान) 2005, भूमिका।

30. दादूदयाल ग्रंथावली, भाग–1, साखी, दया निर्बेरता का अंग 28, पृ. 235

31. वही, पूर्वोक्त, परचा अंग, पृ. 50,

32. दादू दयाल ग्रंथावली, वही, पूर्वोक्त, भाग–1, साखी, साध का अंग, पृ. 169

33. डॉ. बलदेव वंशी', दादूदयाल की ग्रंथावली–अथ चेतावनी अंग–9, बानी–11

34 सिंह, रविन्द्र कुमार–दादू काव्य की प्रासांगिकता, पृ. 96

35. डॉ. बलदेव वंशी, पतिव्रता, (45), दादूदयाल ग्रंथावली, भाग–1, अथ निहकर्मी पतिव्रता का अंग 8, पतिव्रत 47

36. पांडेय, अरूण कुमार, संत दादू और उनकी सामाजिक दृष्टि–''वैचारिकी'' जनवरी, फरवरी, 2014, पृ. 59

.37. डॉ. बलदेवंशी, (सं.) ''दादू ग्रंथावली'' नई दिल्ली, (प्रकाशन संस्थान) 2005